आदिकालीन हिन्दी का प्रशस्ति काव्य

(अवध विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

शोध निर्देशक :-

(डॉ०) एस० एन० शुक्ल

वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

एम० एल० के० कालेज०

बलरामपुर

शोधार्थिनी :-

(श्रीमती) कमला सिंह

एम० ए०

Dr. RamKumarVarma CAM
Report sent on 15.2.80
No remuneration bill received.

RKVarma

आदिकालीन हिन्दी का प्रशस्ति काव्य

(अवध विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

शोध निर्देशक :-
(डॉ०) एस० एन० शुक्ल
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
[illegible] पी० कालेज
बलरामपुर

शोधार्थिनी :-
(श्रीमती) कमला सिंह
एम० ए०

अपनी बात

साहित्य के प्रति मेरा झुकाव हो जाने कैसे अधिक रहा । अनुशीलन करते समय अजाने संस्कार वश हो सही, मैं साहित्य की ओर खिंचने लगी । हिन्दी कक्षाओं में मुझे रुचि आने लगी । स्वभावतः विषय के प्रति रुचि रखने वाले विद्यार्थी के प्रति अध्यापक की रुचि भी बढ़ जाती है, मेरे साथ भी यही हुआ । मैं कुछ साफ कह लेती थी, समझ लेती थी और साफ लिख भी लेती थी फलतः मेरे अध्यापक ने एकाध पुस्तकों की पाण्डुलिपियों के कुछ पन्ने भी मुझसे तैयार कराए - लिखने-पढ़ने की एक ट्रेनिंग यहीं से प्रारम्भ हो गयी । बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करते-करते मैं हिन्दी साहित्य की स्तरोचित पुस्तकों से घिरने लगी । यह सब सम्पर्क का फल ही समझो, पर यह अवश्य कह दूँ कि गुरु की कृपा का सम्पुट मुझे मिला था, वही फलित होने लगा । एम०ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद अब क्या हो ? के उत्तर रूप में मैंने शोध कार्य को उचित समझा ।

शोध-विषय के निर्धारण, रूप-रेखा के निर्माण आदि की सभी औपचारिकताएँ भाग-दौड़ करके पूरी की गयी । फलतः अवध विश्वविद्यालय के तत्कालीन सचिव का एक पत्र मिला कि 'आदिकालीन हिन्दी का प्रशस्ति काव्य' विषय पर पी-एच०डी० उपाधि हेतु डा० एस०एन० शुक्ल के निर्देशन में कार्य करने की स्वीकृति शोध समिति ने दे दी है, फिर तो कार्य प्रारम्भ हुआ । आदरणीय डा० साहब ने मुझे शोध की कठिनाईयों का हवाला देकर आतंकित किया पर निर्देशन उन्हीं का था, प्रेरणा भी उन्हीं की थी फलतः उन्हीं के सहारे से मेरा अध्ययन प्रारम्भ हुआ । इस अध्ययन में आदरणीय डा० साहब, विद्वानों के व्यवहार, शोध-संस्थाओं के परिवेश से दर्शन-अनुभव ने मुझे और प्रोत्साहित किया । मैं बढ़ी तो बढ़ती ही गई, इसके पीछे पड़ गई । माता-पिता की मनचाही आर्थिक सहायता मिली । मेरे मामा जी मेरे साथ-साथ भटक कर सहायक बने रहे । मैं इतना जानती हूँ कि मैंने इस कार्य में सदा पारिवारिक सुख का अनुभव किया । काशी, प्रयाग, गोरखपुर, जयपुर, बीकानेर आदि के ग्रन्थागारों में मेरा मन खूब रमा और जीवन के बहु आयामी अनुभवों से पाला पड़ा, आज उनको याद किये क्या कुछ कर जाती

है, मैं क्या कहूं - क्या न कहूं - 'समुझि मनहिं मन रहिए' । वस्तु संचयन एवं अध्ययन के साथ-साथ मैं लिखती भी जाती थी और इस प्रकार मई, 1979 तक मैंने 6 अध्याय तैयार कर लिए ।

इसी बीच - 'अर्थोहि कन्या परकीय एव' की सार्थकता मेरे लिए नया घर बसाने की बात निर्णीत कर ली गयी । प्रत्येक माँ-बाप के समान यह लालसा मेरे अभिभावकों के लिए भी सहज ही थी । खैर - - - शोध का उपसंहार मेरा 'फल दान जाने के 5 दिन बाद अर्थात् 6 जून को लिख डाला गया । लगातार 3 वर्षकी तपस्या के बाद एक शोध का अनुबन्ध समाप्त कर या तोड़ कर नये सामाजिक शोध की ओर मैं मुड़ गयी या मोड़ दी गयी । सब कुछ बड़ा अप्रत्याशित, बड़ा वैसा-वैसा लग रहा है, मगर जो भी है, है । इस होने में ही सब कुछ सार्थक जान पड़ रहा है ।

इस शोध-प्रबन्ध का सम्पूर्ण विषय उपसंहार समेत 8 अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में 'प्रशस्ति काव्य के स्वरूप, भेद और प्रशस्ति शब्द की व्युत्पत्ति, उसके संकुचित एवं व्यापक अर्थ की व्याख्या की गयी है जिसके अन्तर्गत 'प्रशस्ति काव्य' को मात्र लौकिक नायकों के यशगान के सीमित क्षेत्र से उबार कर व्यापक परिधि प्रदान करते हुए स्तोत्र काव्य एवंअलौकिक यशगान को भी इस विषय के अध्ययन के अन्तर्गत समेट लिया गया है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में लोक यशगान के साथ अलौकिक एवं दिव्य देवो एवं ईश्वरीयता विभूषित पात्रों के स्तवन-वन्दन को भी प्रशस्ति का एक अवदान रूप माना गया है । संस्कृत आदि पूर्ववर्ती साहित्य की प्रशस्ति परम्परा का संक्षिप्ततः निर्देश करते हुए आदिकालीन हिन्दी प्रशस्ति काव्य से उसका तर्कानुमोदित ताल-मेल ही नहीं बैठाया गया है अपितु संस्कृत के विभिन्न काव्यांगों में उपलब्ध प्रशस्ति की चेतना काहिन्दी के आदिकालीन प्रशस्ति काव्य पर प्रभाव भी निरूपित किया गया है । उभय साहित्य के प्रकाश में उभरने वाले प्रशस्ति के विभिन्न सन्दर्भों को नामांकित करके उनकी व्याख्या के साथ यह अध्याय समाप्त कर दिया गया है ।

द्वितीय अध्याय में आदिकालीन साहित्य की समय-सीमा, काल-दर्शन, काव्य-प्रवृत्ति, काल-विभाजन, नामकरण पर विद्वानों द्वारा दी गयी टिप्पणियों को परखते हुए उनकी गहराई से सोचने-समझने का प्रयत्न किया गया है । आदिकालीन

काव्य के प्रेरक तत्व की परीक्षा एवं विवेचना करते हुए साधनात्मक एवं सामन्तीय प्रेरक तत्वों पर पृथक्-पृथक् विचार किया गया है । सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रेरणा के क्रिमक-विकास की भी मीमांसा की गयी है । अध्याय के अन्तिम चरण में आदिकालीन काव्य के परिपार्श्व में प्रशस्ति की सम्भावना के सभी सम्भव द्वार खोलने के सुचिन्तित प्रयास को सामने लाया गया है । तृतीय अध्याय में आदिकालीन काव्य के भेद और उसकी प्रवृत्तियों को बिठाते हुए अपभ्रंश एवं डिंगल के उभय भेदों को स्पष्ट किया गया है । अपभ्रंश के साधनात्मक एवं डिंगल के सामन्तीय काव्य-वर्गों के बीच जैन, सिद्ध, नाथ एवं चारण काव्य के स्वरूप का पृथक्-पृथक् विवरण प्रस्तुत किया गया है । सामन्तीय काव्य की विभिन्न शैलियों का निर्देश करते हुए उनमें सम्भावित प्रशस्ति की दिशाओं को भी इंगित किया गया है । सामन्तीय काव्य की दरबारी चेतना को प्रकाशित करते हुए आदिकालीन कवि एवं काव्य का विवरण प्रामाणिकता के सन्दर्भ में सामने लाने का प्रयास किया गया है । सिद्धों के साधना पर भी इसी प्रकार विचारते हुए नाथ कवियों का विश्लेषण किया गया है । तत्पश्चात् वीर काव्य की स्वतन्त्र भाव-धारा को रेखांकित करके युग की मुख्य धारा को स्पष्ट किया गया है । अन्त में उभय कोटि के काव्य की प्रेरक प्रवृत्तियों को निर्दिष्ट कर दिया गया है ।

चौथे अध्याय में शोध के मूल कलेवर की स्थापना प्रारम्भ कर दी गयी है, फलतः इस अध्याय में जैन काव्य में उपलब्ध प्रशस्ति के स्वरूप पर विचार के साथ विवेचना की गयी है । प्रणति एवं शरणागति भाव, स्तुति एवं आराधना, सम्पदा एवं वैभव, रूपात्मक एवं वीरता मूलक प्रशस्ति का पूरी गहराई एवं व्यापकता से विश्लेषण ही इस अध्याय का मुख्य विषय रहा है । पाँचवें अध्याय में साधनापरक आदिकालीन धारा के उभय स्रोतों - सिद्धों - नाथों की कविता में पाई जाने वाली प्रशस्ति की विभिन्न कोटियों का सोदाहरण विश्लेषण किया गया है । प्रणति एवं समाराधना, महिमागान की प्रशस्ति धारा का निरूपण करते हुए चर्यागीतों में पायी जाने वाली प्रशस्ति भावना को उसके मूल स्रोत के साथ उजागर किया गया है ।

छठवें अध्याय में चारणों की कृतियों में पाई जाने वाली प्रशस्ति भाव-धारा का निरीक्षण-परीक्षण करने से पूर्व इस काव्य का पुनरावलोकन भी कर लिया गया है । इस धारा के कवियों एवं कृतियों के वर्णन के बीच वीरगाथाओं

की दुलर्भता पर भी विचार किया गया है । यह भी उल्लेख्य है कि यह काव्य वीर रस प्रधान काव्य है । इस दृष्टि से भी इसकी चर्चा की गयी है । चारणों का महत्व, राजपूती जीवन मूल्य, चारण-प्रवृत्ति एवं चारण काव्य की व्यापकता पर भी विचार किया गया है । चारणों द्वारा रचित काव्य को प्रशंसात्मक काव्य, वीर काव्य, भक्ति काव्य तथा इतर काव्य की चार कोटियों में बाँट कर उसकी प्रशस्ति भावना की विवेचना की गयी है । स्तुति एवं समाराधना, यशगान एवं महिमा निरूपण, वीरता - वर्णन, वैभव एवं सम्पदा का चित्रण तथा रूप के गान के बहाने चारणों ने प्रशस्ति काव्य की जो स्वस्थ परम्परा प्रवर्तित की थी, उसका सही मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

साधनात्मक एवं सामन्तीय काव्य में उपलब्ध प्रशस्ति के विभिन्न रूपों की पारस्परिक तुलना करते हुए उनके सकारण विकास का विवेचन ही सातवें अध्याय का प्रतिपाद्य है । साम्य-वैषम्य का निर्धारण करने के पूर्व उभय कोटि में लिखे गए आदिकालीन काव्य की प्रेरक पृष्ठभूमि का भी संकेत कर दिया गया है । इस परिणाम की स्वीकृति भी इसी अध्याय में की गयी है कि आदिकाल के समूचे काव्य में प्रशस्ति की दो ही मूल धाराएँ हैं - (1) स्तुति मूलक और (2) वीरता मूलक । इस अध्याय के अन्तर्गत आदिकालीन काव्य पर पड़ने वाले पूर्ववर्ती प्रभाव के रूप में जो कुछ ग्रहण किया गया है उसका विश्लेषण करने के साथ-साथ इस काव्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव भी निदर्शित किया गया है । इस प्रकार 'आदान-प्रदान' शीर्षक से 'प्रशस्ति काव्य' की दृष्टि से हिन्दी की सम्पूर्ण काव्य-धारा पर विहंगम दृष्टि डाली गयी है ।

अन्त में 'अवदान एवं मूल्यांकन' के रूप में इस शोध प्रबन्ध के महत्त्व एवं गरिमा को भी रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है ।

अन्तिम एवं आठवें अध्याय में शोध - प्रबन्ध के लगभग 7 - 8 सौ वर्ष के आदिकालीन हिन्दी साहित्य की संक्रमण कालीन विकास परम्परा के प्रकाश में विभिन्न प्रकार के काव्य की पृष्ठभूमि, प्रेरक परिस्थितियाँ, उपलब्ध प्रवृत्ति के निरूपण के साथ सारग्राही वृत्ति के अनुसार प्रशस्ति भाव-धारा के स्वरूप-विकास को संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया गया है । प्रबन्ध के सभी पक्षों को सारांश रूप में गुम्फित करना ही इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य रहा है ।

टंकण की तकनीकी असुविधा के कारण मैं शोधप्रबन्ध मनोनुकूल रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकी हूँ ।

देश और प्रदेश के इस एकान्त क्षेत्र में भी उच्च शिक्षा की सुविधाएँ तो अवश्य हैं, पर शोध सम्बन्धी सुविधाओं - विशेष कर पुरानी पोथियों की सुलभता के विचार से बलरामपुर क्षेत्र में रह कर काम करना कठिन है एवं खर्चीला भी - समय की दृष्टि से भी और अर्थ के विचार से भी । अतएव शोध-प्रबन्ध को तैयार करने में मुझे प्रायः समूचे हिन्दी प्रदेश से निरन्तर जुड़े रहना पड़ा । प्रसन्नता है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थाओं, साहित्य सेवी संस्थाओं एवं व्यक्तियों ने मुझे पूरा सहयोग और प्रोत्साहन दिया । मैं उनके प्रति आभार अनुभव करती हूँ ।

आज जब यह प्रबन्ध अपने यत्किंचित् रूप में आकारवान हो गया है, मेरे मामा श्रद्धेय विश्वनाथ सिंह का मेरे साथ यात्राओं पर दूर-दूर जाना, भोजन-भजन की व्यवस्था के और प्राप्त वात्सल्य आदि बहुत कुछ याद आता है । निर्देशक डा० शुक्ल का अशेष तुल्य कार्य और उनके साथ डांट-फटकार की लम्बी परम्पराएँ भुलाने से नहीं भूलतीं । उनका अक्खड़ व्यक्तित्व एवं फक्कड़ अन्दाज़ ही तो मेरे शोध की पूँजी रही । इसके एक-एक वाक्य एवं एक-एक विचार उन्हीं के द्वारा सहेजे-सँवारे गए हैं । मैं उनके उपकार, उदारता एवं सहयोग की चिरऋणी हूँ । उनका व्यक्तित्व अपार ज्ञान एवं सतत् प्रेरणा का एक आलोकपुंज है । माता-पिता की स्नेहिल छाया में नीचे लिखा गया यह शोधप्रबन्ध उनका ही प्रसाद है । आचार्य डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र काशी, डा० विजयपाल सिंह काशी, श्रीनाथ सिंह तथा सुधाकर पाण्डेय (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी), डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल (जयपुर), श्री अगरचन्द नाहटा (बीकानेर) आदि ने इस शोध-प्रबन्ध के तैयार करने में जो स्नेह एवं सहयोग दिया है उसे मेरा चेतन भली भाँति समेटे हुए है । श्री श्यामकृष्ण पाण्डेय सहायक मन्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा उनके शोध संस्थान के कर्मचारी तो मेरे परिजन ही बन गए थे उनके प्रति मैं आभार अनुभव करती हूँ । नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के कोने वाली कोठरी में रहने वाले निरक्षर वह चम्पी और 'उसकी माई' के चित्र मैं साफ देख रही हूँ । काशी वास में उनसे मुझे बड़ा सहयोग मिला ।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, काशी विद्या

पीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, प्राच्य विद्या संस्थान जयपुर (जोधपुर शाखा) ----- शोध संस्थान जयपुर एवं बीकानेर के पुस्तकालय अध्यक्षों ने मेरी शोध यात्रा को फलवती बनाया, उन्होंने मुझे बल दिया एवं बाधाएँ मिटाई हैं । उनके प्रति मेरा कृतज्ञ होना सहज ही है ।

अन्त में जाने - अनजाने मेरे इस अनुष्ठान में सहायक होने वालों के लिए मैं पुनः आभार व्यक्त करती हूँ और आशा करती हूँ कि 8 अध्यायों में प्रस्तुत 'आदिकालीन हिन्दी का प्रशस्ति काव्य' शीर्षक यह अनुशीलन युगीन साहित्य को समझने में एक नया आधार देगा, यही इसकी सार्थकता होगी और मेरी सफलता । विद्वानों का आशीष लेकर मैं इसे अग्निपरीक्षा हेतु प्रस्तुत कर रही हूँ । तथास्तु ।

कमला सिंह

बलरामपुर

[redacted]

आषाढ़ पूर्णिमा

जुलाई 9, 1979

विषयानुक्रम

अध्याय 1 : 5-25

प्रशस्ति काव्य : स्वरूप एवं भेद

प्रशस्ति शब्द की व्युत्पत्ति एवं व्याख्या, सीमित एवं व्यापक अर्थ, संस्कृत स्तोत्र साहित्य और उसका आदिकालीन हिन्दी प्रशस्ति काव्य पर प्रभाव, संस्कृत के अन्य काव्यांगों की प्रशस्ति का आदिकालीन हिन्दी काव्यों पर प्रभाव – महाकाव्य, चरित काव्य, नाटक, कथा साहित्य, शिलालेख । प्रशस्ति काव्य के भेद – (अ) लौकिक (ब) अलौकिक । प्रशस्ति के तत्व – यशगान, देश-वर्णन, वीरता, वर्णन, याचना एवं प्रणति, सम्पदा वर्णन, स्तुति एवं आराधना, शरणागत भाव, रूप वर्णन तथा अन्य ।

अध्याय 2 : 26-70

हिन्दी काव्य का विकास क्रम और विवेच्य काल में प्रशस्ति की संभावना काव्य का विकास क्रम, मतभेद और उनका कारण ।

काल विभाजन एवं नामकरण – वीरगाथा काल : नामकरण का औचित्य, आदिकाल बनाम वीरगाथा काल ।

आदिकालीन काव्य के प्रेरक तत्व – सामन्तीय तत्व, सामाजिक तत्व, राजनीतिक प्रेरणा, भौगोलिक प्रेरणा, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रेरणा, ऐतिहासिक प्रेरणा । युगीन काव्य में प्रशस्ति की अवसम्भाविता ।

अध्याय 3 : 71-131

(अ) आदिकालीन काव्य : भेद एवं प्रवृत्ति : साधनात्मक, सामन्तीय

(ब) स्वरूप एवं विभाजन –

(1) जैन काव्य

(2) बौद्ध काव्य (सिद्ध काव्य)

(3) नाथ काव्य

सामन्तीय काव्य – जैन शैली, चारण शैली, सन्त शैली, लौकिक शैली ।

(स) सामन्तीय काव्य : दरबारी चेतना

(द) आदिकाल के कवि एवं काव्य

(य) सिद्ध कवि एवं काव्य – सिद्ध काव्य के संकलन, सिद्ध कवि, सिद्ध साहित्य का वर्गीकरण ।

(र) नाथ कवि एवं काव्य

(ल) वीर काव्य

समय कोटि के भावों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ –

(अ) धार्मिक

(ब) सामन्तीय

अध्याय 4 : 132-180

जैन काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

(अ) जैन काव्य एक पुनर्मूल्यांकन

(ब) जैन काव्य में प्रशस्ति –

(1) प्रणति एवं शरणागति भाव

(2) स्तुति एवं आराधना

(3) यश एवं प्रताप वर्णन

(4) सम्पदा एवं वैभव वर्णन

(5) रूपात्मक प्रशस्ति

(6) वीरता मूलक प्रशस्ति

निष्कर्ष ।

अध्याय 5 : 189-217

सिद्ध - नाथ काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

(अ) सिद्धनाथ काव्य : एक पुनर्मूल्यांकन – सिद्धों का परिचय, सिद्ध कवि, और काव्य, बाद्ध सिद्धों के चर्या गीत ।

(ब) नाथ पंथ और उसका साहित्य – सम्प्रदाय और साहित्य ।

सिद्ध नाथ काव्य में प्रशस्ति

(1) प्रणति एवं समाराधना

(2) महिमा गान

(3) चर्या गीतों में 'प्रशस्ति' के बीज

अध्याय 6 : 210-266

सामन्तीय या चारण काव्य में प्रशस्ति का स्वरूप

(अ) सामन्तीय काव्य एक पुनर्विचय

(ब) कवि एवं वृत्तियों का विहगावलोकन

(स) चारण अथवा वीर काव्यों की दुर्लभता

(द) चारणों का महत्व

(य) राजपूतों के महज्जीवन मूल्य ।

चारण प्रवृत्ति और चारण काव्य की व्यापकता

प्रशस्ति की सम्भावनाएं –

(1) प्रबंधात्मक काव्य

(2) वीर काव्य

(3) भक्ति काव्य

(4) शृंगार काव्य

(5) इतर काव्य

सामन्तीय काव्य में प्रशस्ति के विभिन्न रूप –

(1) वन्दना, प्रणति एवं आराधना

(2) यश एवं प्रताप वर्णन

(3) वीरता मूलक प्रशस्ति

(4) त्यागमय प्रशस्ति

(5) सम्पदा एवं वैभव वर्णन

(6) यश एवं महिमा गान

निष्कर्ष ।

अध्याय 7 :

267-295

साधनात्मक एवं सामन्तीय काव्य का तुलनात्मक अनुशीलन

(अ) साम्य - (1) स्तुति मूलक प्रशस्ति (2) वीरता मूलक प्रशस्ति ।

(ब) वैषम्य

आदान - प्रदान

(1) जैन काव्य का परवर्ती हिन्दी काव्य पर प्रभाव
चरित्र से अवतार तक

(2) सिद्ध नाथ साहित्य और मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन

(अ) आदिकालीन काव्य का प्रेममार्गी काव्य पर प्रभाव

(ब) आदिकालीन काव्य का रीति काव्य पर प्रभाव

(3) चारणों की वीरगाथाएँ और हिन्दी का परवर्ती वीर काव्य

(4) अवदान और मूल्यांकन

296—305

अध्याय 8 :

उपसंहार